काव्यभाषा और प्रयोगशीलता
(अज्ञेय तथा टी0एस0इलियट के संदर्भ)

डॉ0 विधि शर्मा,

अदिति महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय

हिंदी कविता के विकास पर यदि ध्यान केंद्रित किया जाए तो एक बात स्पष्ट रूप से सामने आती है कि प्रयोग सभी काल कि कवियों ने किया है। यह प्रयोगशीलता ही काव्य में युग–प्रवर्तन का आधार रही है। ''प्रयोगों के द्वारा ही कविता या कोई भी कला, कोई भी रचनात्मक कार्य आगे बढ़ सका है। जो कहता है कि मैंने जीवन–भर कोई प्रयोग नहीं किया, वह वास्तव में यही कहता है कि मैंने जीवन–भर कोई रचनात्मक कार्य करना नहीं चाहा...।''[1] इस प्रकार आधुनिक वैज्ञानिक शब्दावली के शब्द 'प्रयोग' को अज्ञेय ने विशेष महत्व दिया। वे स्वयं भी विज्ञान के विद्यार्थी थे जिसका असर उनके समूचे रचना–कर्म एवं उनकी अवधारणाओं और साथ ही भाषा पर भी लक्षित होता है। लेकिन 'प्रयोग' को पर्याप्त महत्व देने के बावजूद वे उसे रचना का आधार नहीं मानते। उनके अनुसार किसी भी रचना में महत्व उस सत्य का है जिसे कवि प्रयोग द्वारा अर्जित करता है, न कि मात्र प्रयोगशीलता का। इस प्रकार प्रयोग उस सत्य तक पहुँचने का माध्यम अथवा प्रक्रिया है जिसे वह अपनी रचना में संप्रेषित करता है:''...प्रयोगशीलता ही किसी रचना को काव्य नहीं बना देती। हमारे प्रयोग का पाठक या सहृदय के लिए कोई महत्व नहीं है, महत्व उस सत्य का है जो प्रयोग द्वारा हमें प्राप्त हो।''[2] अतः हर नई पीढ़ी की अपनी पूर्ववर्ती पीढ़ी से कुछ अलग और नया कहने की प्रवृत्ति के पीछे उसकी अन्वेषक दृष्टि होती है। इस नई अभिव्यक्ति के लिए नई भाषा का होना भी ज़रूरी है। हर युग में काव्य–संवेदना में बदलाव आता जाता है। युग और पीढ़ी के बदलाव के साथ–साथ भाषा में होने वाले परिवर्तन को लक्षित करते हुए आलोचक मलयज ने लिखा है : ''हम अपनी पूर्ववर्ती पीढ़ी से किस बिंदु पर भिन्न हैं तो इसके लिए किसी स्थूल रास्ते पर न जाकर सर्जनात्मक लेखन की भाषा की सूक्ष्म तहों को ही उलटना–पलटना श्रेयस्कर होगा।''[3]

आज कवि के सामने जो सबसे बड़ी समस्या है, वह भाषा की ही है। इस समस्या से अज्ञेय भी लगातार दो–चार हो रहे थे। काव्य को स्वांतःसुखाय या आत्माभिव्यक्ति न मानते हुए वे उसे दूसरे तक अभिव्यक्त करने (संप्रेषण) से जोड़ते हैं। किसी भी रचना में भाषा का विशेष महत्व होता है लेकिन जिस समय रचनाकार रचना करता है उस समय उसे भाषा की चिंता नहीं होती। न ही अपनी भाषा में रचनात्मकता लाने का वह अलग से कोई प्रयास करता है। उसकी भाषा में रचनात्मकता का निर्वाह कहाँ तक हुआ है इसका निर्णय पाठक, गृहीता, सामाजिक या आलोचक करता है और स्वाभाविक रूप से रचना होने के बाद करता है। ऐसे में पाठक या सामाजिक की भूमिका अहम् हो जाती है। बदली हुई परिस्थितियों के कारण जहाँ कवि की संवेदनाएँ अधिक उलझी हुई हैं वहीं इन परिस्थितियों के चलते पाठक की मनोवृत्तियों एवं जीवन परिपाटी में भी घोर वैषम्य देखने को मिलता है। इस वैषम्य के कारण एक ही सामाजिक स्तर के दो पाठकों की

विचार–संयोजना में इतनी असमानता हो सकती है कि एक शब्द से दोनों के मन में अलग–अलग प्रकार के चित्र या भाव उदित हों। ऐसे में शब्दों के साधारण अर्थ से बढ़कर उसमें कुछ नया और बड़ा अर्थ हम उसमें भरना चाहते हैं, पर उस बड़े अर्थ को पाठक के मन में उतार देने के साधन अपर्याप्त हैं।''[4] यहाँ साधन की जिस अपर्याप्तता की बात हो रही है वह वास्तव में भाषा की समस्या है जिससे अज्ञेय और उनके समकालीन कवि जूझ रहे थे। अपने पूर्ववर्ती कवियों (विशेष रूप से छायावादी कवियों) की भाषा को वे अपनी संश्लिष्ट और उलझी हुई संवेदना की अभिव्यक्ति में बाधक पा रहे थे जिसके लिए अज्ञेय ने लिखा :

''यह जो लीक हमको मिली थी –

अंधी गली थी।''[5]

भाषा की इसी अपर्याप्तता की चर्चा करते हुए उन्होंने *तारसप्तक* के अपने वक्तव्य में लिखा : ''भाषा को अपर्याप्त पाकर विराम संकेतों से, अंकों और सीधी–तिरछी लकीरों से, छोटे–बड़े टाइप से, अधूरे वाक्यों से – सभी प्रकार के इतर साधनों से कवि उद्योग करने लगा कि अपनी उलझी हुई संवेदना की सृष्टि को पाठकों तक अक्षुण्ण पहुँचा सके।''[6] इस प्रकार नए अनुभव और नई दृष्टि की अभिव्यक्ति के लिए पुराने भाषा–संसार को तोड़कर, नए माध्यम की तलाश आवश्यक हो जाती है और यही उस युग का कवि भाषागत विभिन्न प्रयोगों के माध्यम से कर रहा था। अज्ञेय ने 'भाषा की क्रमशः संकुचित होती हुई केंचुल को फाड़कर उसमें नया, अधिक व्यापक अधिक सारगर्भित अर्थ' भरने का प्रयास किया। साहित्यकार का रचना की भाषा के साथ सनातन संबंध मानते हुए अज्ञेय का कहना है कि वह अपनी विशिष्ट एवं अभूतपूर्व अभिव्यक्ति के लिए एक कुशल कारीगर की भांति नई भाषा गढ़ता है। एक ऐसी भाषा जो जीवंत हो और जिसमें अनवरत प्रवहमानता हो। यदि रचनाकार की भाषा जड़ हो जाती है तो उसकी रचना भी निर्जीव हो जाती है। उसमें प्रामाणिकता का अभाव हो जाता और उसका अपना आत्म–विश्वास भी खोने लगता है। इस प्रकार उसकी रचना आवृत्ति मात्र बनकर रह जाती है। लेखक का कर्तव्य है कि वह भाषा का महत्वपूर्ण योगदान है। जड़ और निष्प्राण भाषा समाज के विकास में अवरोधक है।

टी0एस0इलियट ने भी काव्यभाषा को विशेष महत्व देते हुए अन्य कलाओं (चित्रकला, संगीत–कला आदि) से कविता की भिन्नता का आधार भाषा को ही माना है। काव्यभाषा संबंधी उनके विचार–सूत्र उनके विविध निबंधों विशेष रूप से, 'द म्यूज़िक ऑफ पोइट्रि', 'द सोशल फंक्शन ऑफ पोइट्रि आदि में बिखरे हुए हैं। इलियट का मानना है कि यों तो प्रत्येक कला की अपनी स्थानीय और जातीय विशेषता होती है, किंतु कविता में यह विशेष रूप से उभरकर आती है तो उसका कारण भाषा ही है। यही वजह है कि ''कवि की जाति और भाषा से जुड़े हुए लोगों के लिए उसका (कविता का) जो मूल्य होता है वह अन्य किसी के लिए नहीं हो सकता।''[7] ऐसे में कवि का दायित्व बहुत बढ़ जाता है, विशेष रूप से अपनी भाषा के प्रति। अपनी भाषा की रक्षा के साथ–साथ उसके विकास और विस्तार की भी ज़िम्मेदारी का निर्वाह उसे करना होता हो : ''उसका प्रत्यक्ष दायित्व अपनी भाषा के प्रति होता है–पहले वह उसकी रक्षा करे, फिर उसका विकास और विस्तार करे।''[8] सच्चा कवि संवेदना के नए–नए रूप खोजता है और उन्हें वाणी देकर वह अपनी भाषा को भी समृद्ध और विकसित बनाता है।

आज भाषा और संस्कृति पर कई तरह से संकट मंडरा रहा है। विश्व के नक्शे से असंख्य भाषाओं एवं संस्कृतियों का विलुप्त होते जाना इसका प्रमाण है जिसके आरंभिक संकेत इलियट के समय में मिलने लगे थे। किसी भी भाषाई समुदाय से अपनी भाषा और संस्कृति विकृत हो

जाती है। इलियट का मानना है कि ऐसे में कवि का दायित्व और भी बढ़ जाता है। वह अपनी कविता के माध्यम से भाषा के इस उन्मूलन को रोक सकता है। पुरानी भाषा का उन्मूलन तब तक संभव नहीं है जब तक नई भाषा में अनुभव करने की क्षमा विकसित नहीं होती। नई भाषा को सीखना, उसमें अपने विचार रखना तो आसान है किंतु उसका 'अनुभव की भाषा' बन पाना उतना ही कठिन है। इसीलिए हर देश और काल में महान लेखकों, विशेष रूप से कवियों की इस महत्वपूर्ण भूमिका की ओर इशारा करते हुए इलियट ने लिखा : ''जब तक वे महान लेखकों को, और विशेष रूप से महान कवियों को, जन्म नहीं देते रहते, उनकी भाषा विकृत हो जाएगी और संभवतः किसी बलवृतर संस्कृति में अपने अस्तित्व को विलीन कर देगी।''[9] ("...unless they go on producing great authors, and especially great poets, their language will deteriorate, their culture will de-teriorate and perhaps become absorbed in a stronger one.") इस प्रकार भाषा को सुरक्षित रखने और उसका पुनरुद्धार करने में कवि और कविता की अहम भूमिका होती है। कवि के चारों तरफ जो उसकी अपनी भाषा बोली जाती है उसे वह अपनी कविता की सामग्री के रूप में ग्रहण करता है। इसीलिए कविता की गुणवत्ता बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करती है कि लोग अपनी भाषा का प्रयोग कैसे करते हैं। यदि उसकी भाषा उन्नति की की दिशा में आगे बढ़ रही है तो इसका उसे लाभ मिलेगा। यदि वह पतनोन्मुख है तो इसका भी वह फायदा उठा सकता है। भाषा को एक नया संस्कार देकर, उसमें नवीनता का उन्मेष करके वह उसे पुनर्जीवित कर सकता है : ''कविता एक हद तक किसी भाषा के सौंदर्य को सुरक्षित रख सकती है, बल्कि उसका पुनरुद्धार कर सकती है। कविता भाषा के विकास में योग दे सकती है और वास्तव में उसे ऐसा करना भी चाहिए ताकि वह आधुनिक जीवन की जटिलतर स्थितियों और उसके बदलते हुए प्रयोजनों को पूरी सूक्ष्मता और सटीकता से व्यक्त कर सके।''[10]

इलियट और अज्ञेय दोनों ने ही अपनी आलोचनात्मक मान्यताओं में परंपरा को विशेष महत्व दिया है। लेकिन भाषा के संदर्भ में विचार किया जाए तो जहाँ अज्ञेय परंपरा से अर्जित भाषा को अपनी अभिव्यक्ति में बाधक पाते हुए प्रयोगशीलता पर निरंतर बल देते हैं वहीं दूसरी ओर इलियट भाषा को भी परंपरा से जोड़कर देखते हैं। उनका मानना है कि भाषा और शब्द–प्रयोग को लेकर नया कवि अपने पूर्ववर्ती कवियों से बहुत कुछ सीख सकता है, बस उसे उनका गंभीरता से अध्ययन करना होगा : ''कोई अंग्रेज़ी कवि यदि यह जानना चाहता है कि हमारे युग में शब्दों का प्रयोग कैसे किया जाए, तो उसे उन कवियों का गंभीरता से अध्ययन करना होगा जिन्होंने अपने समय में उनका अच्छे से अच्छा उपयोग किया है–उन कवियों का जिन्होंने अपने समय में भाषा को नया बनाया है।''[11] ("Indeed,if an English poet is to learn how to use words in our time, he must devote close study to those who have used them best in their time; to those who, in their own day, have made the language new.")

कविता और जनभाषा

काव्यभाषा को लेकर इलियट ने जो अपने विचार रखे हैं उसमें कविता में जनभाषा या सामान्य भाषा की विशेष रूप से पक्षधरता देखने को मिलता है। सामान्यतः गद्य की अपेक्षा, कविता कहीं अधिक स्थानीय होती है। इसी स्थानीयता के गुण ने कविता में जनभाषा के प्रयोग की ओर कवि का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित किया। यह भी कहा जा सकता है कि जन–भाषाओं के साहित्यिक प्रयोग की ओर निश्चित रुझान का सिलसिला कविता से ही शुरू हुआ। कविता में निहित विशिष्ट भाव और संवेदनाओं को

जन–सामान्य की भाषा में सबसे अच्छी तरह अभिव्यक्त किया जा सकता है : ''भाव और संवेदनाएँ जनता की सामान्य भाषा में सबसे अच्छी तरह व्यक्त की जा सकती हैं–दूसरे शब्दों में, ऐसी भाषा में जो सभी वर्गों के लिए सामान्य हों।''[12] इसीलिए कविता को सामान्य बोलचाल की भाषा से अपना संपर्क बनाए रखना चाहिए, चाहे किसी भी प्रकार की कविता क्यों न हो : ''सामान्य बोलचाल की भाषा हम इस्तेमाल करते हैं और सुनते हैं, कविता की भाषा को उससे बहुत अलग नहीं पड़ जाना चाहिए। चाहे कविता बलाघातीय हो या आक्षरिक, तुकांत हो या अतुकांत, औपचारिक हो या मुक्त, सामान्य बोलचाल की परिवर्तनशील भाषा से वह अपना संपर्क तोड़ नहीं सकती।''[13]

कविता में सामान्य बोलचाल की भाषा को विशेष महत्व देते हुए इलियट ने अपना जो पक्ष रखा है उसमें यह भी जोड़ दिया कि सामान्य बोलचाल से यह अभिप्राय नहीं है कि कविता की भाषा हू–ब–हू वैसी ही होगी जैसी कि कवि बोलता या सुनता है। इतना ज़रूर है कि वह ऐसी भाषा होनी चाहिए जिसे पढ़कर पाठक को यह आभास हो कि यदि वह कविता में बात करे तो ऐसे ही करेगा। यह तभी संभव होगा जब अपने समय की भाषा (जनभाषा) से कविता का निकट संबंध होगा। कवि द्वारा अपने चारों ओर बोली जाने वाली जानी–पहचानी भाषा के कविता में प्रयोग पर बल देते हुए उन्होंने लिखा :''कवि का यह कार्य होगा कि वह अपने चारों ओर जो भाषा देखता है, जो भाषा उसके लिए ज़्यादा से ज़्यादा जानी–पहचानी हैए उसका उपयोग करे।''[14] लेकिन इसी के साथ कवि को यह बात भी स्मरण रखनी चाहिए कि बोलचाल की भाषा में निरंतर परिवर्तन की प्रक्रिया चलती रहती है। उसके शब्द–समूह, वाक्य–विन्यास, उच्चारण और लहजे आदि में परिवर्तन, यहाँ तक कि गिरावट भी आती जाती है जिससे कविता की भाषा पुरानी पड़ जाती है। अतः कवि की यह ज़िम्मेदारी है कि बोलचाल के स्तर पर भाषा में जो परिवर्तन आते हैं उन्हें लक्षित करके कविता की भाषा में भी संशोधन–परिवद्र्धन करता चले ताकि कविता की भाषा जड़ न हो जाए, अपितु उसमें नवीनता का उन्मेष होता रहे। इस प्रकार कवि भाषा की गुणवत्ता और क्षमता को विकसित करने और उसे कायम रखने में योग देता है। इलियट का तो यहाँ तक मानना है कि कविता में जो भी क्रांतिकारी परिवर्तन होते हैं उनका संबंध प्रमुख रूप से उसकी भाषा से ही होता है जिसका मूल उद्देश्य कविता की भाषा को सामान्य भाषा की ओर ले जाना है : ''कविता में हर क्रांतिकारी परिवर्तन उचित ही सामान्य भाषा की ओर प्रत्यावर्तन है।''[15] ("Every revolution in poetry is apt to be, and sometimes to announce itself to be a return to common speech.")

दूसरी ओर अज्ञेय ने आरंभ से ही जनभाषा या सामान्य भाषा की ओर कोई विशेष रुझान नहीं दिखाया। प्रगतिशील आंदोलन और उससे जुड़े लेखकों ने अपने साहित्य में जिस 'आम आदमी' और 'आम भाषा या साधारण भाषा' की बात उठाई, अज्ञेय ने उसका भी खंडन किया। उनका मानना है कि साहित्य की भाषा कभी आम भाषा नहीं हो सकती। सभी की पहचानी हुई होने के कारण उसे 'साधारण शब्दावली' अवश्य कहा जा सकता है लेकिन उस साधारण शब्दावली को भी कवि अपने सर्जक प्रयोग के माध्यम से असाधारण बना देता है जिससे कविता का एक–एक शब्द बहुमूल्य हो जाता है : ''जैसे कवि–दृष्टि 'आम' आदमी को खास बनाती हैए वैसे ही कवि–प्रयोग 'आम' शब्द को खास बनाता है।''[16] यह खास बनाने की कला जीवन की जटिलता के साथ मिलकर कई बार उनकी अपनी भाषा को भी गूढ़ और 'आलौकिक' तक बनाती है। कवि की भाषा में इस गूढ़ता और आलौकिकता की वकालत करते हुए अपने एक निबंध में उन्होंने लिखा : ''जीवन की जटिलता को अभिव्यक्त करने वाले कवि की भाषा का

किसी हद तक गूढ़, 'आलौकिक' अथवा दीक्षा द्वारा गम्य (एसोटेरिक) हो जाना अनिवार्य है।''[17] वहाँ 'दीक्षागम्यता' या 'आलौकिकता' को अज्ञेय व्याख्यायित नहीं करते। हाँ, इतना ज़रूर है कि भाषा के 'दीक्षा द्वारा गम्य' होने का अर्थ संकेत वह कोष्ठक में दिए गए अंग्रेज़ी शब्द 'एसोटेरिक' (esoteric) के माध्यम से कर देते हैं। अपने 'तारसप्तक' (1943) के वक्तव्य में भी भाषा को लेकर उन्होंने ठीक यही बात कही है किंतु वहाँ 'दीक्षा–गम्यता' के लिए अंग्रेज़ी शब्द 'एसोटेरिक' का प्रयोग उन्होंने नहीं किया है। शायद अपनी बात को और अधिक स्पष्ट करने के लिए ही उन्हें यहाँ अंग्रेज़ी के इस विशेषण को जोड़ने की ज़रूरत पड़ी। लेकिन जब तक घोषित तौर पर कुछ कहा न जाए, शब्द भर दे देने से बात नहीं बनती।

कविता में आम भाषा या जनभाषा का अज्ञेय ने भले ही विरोध किया हो लेकिन काव्यभाषा में यथासंभव स्वाभाविकता के निर्वाह पर हमेशा बल दिया है। उनके अनुसार भाषा में कलापूर्ण उक्तियों और चमत्कारिकता के स्थान पर सीधे–सादे ढंग से अपनी बात कहना ज़्यादा ज़रूरी है। काव्यभाषा में बहुत अधिक सजावट एवं कला की नफ्फासी को वे व्यर्थ मानते हैं। आगे चलकर अज्ञेय और उनके समकालीन कवियों ने 'साहित्यिक भाषा' और बोलचाल की भाषा के भेद को मिटाने का प्रयास किया। बोलचाल की भाषा को काव्य में प्रश्रय देने का अर्थ यह नहीं था कि ये कवि एक सरल भाषा को अपनाना चाहते थे अपितु एक ऐसी भाषा को काव्यभाषा बनाने की ओर उनका निरंतर प्रयास था जो सहज और अकृत्रिम हो।

अज्ञेय ने अभिव्यक्ति के लिए हमेशा अपनी भाषा (स्वदेशी भाषा) पर बल दिया। उनका मानना है कि कोई भी परायी भाषा कभी आत्माभिव्यक्ति का माध्यम नहीं बन सकती। साथ ही कोई भी समाज किसी परायी भाषा में नहीं जी सकता क्योंकि इससे उसकी अपनी अस्मिता कुंठित होती है। उन्होंने माना कि समग्र आधुनिक भारतीय भाषाओं में हिंदी का महत्व सबसे अधिक है। उर्दू, बंगला आदि की अपेक्षा हिंदी अधिक ग्रहणशील है। अपनी ग्रहणशीलता और निर्माणशीलता के कारण उसमें एक प्रकार का लचीलापन है जिसके चलते हिंदीतर भाषा–भाषी भी सुगमता से कामचलाऊ हिंदी लिख–बोल लेता है। हिंदी को जन–साधारण की भाषा मानते हुए उन्होंने लिखा : ''हिंदी अपनी लंबी परंपरा में सदैव जन–विद्रोह की भाषा रही है, और जन–साधारण की आशाओं, आकांक्षाओं और उमंगों ने हिंदी के माध्यम से अभिव्यक्ति पाई है।''[18] अन्य भारती भाषाओं में जहाँ प्रदेश विशेष का प्रतिनिधित्व रहता है वहीं हिंदी भारतीय चेतना को वाणी देती है। हिंदी ऐसी भाषा है जो प्रदेश की बोली या बोलियों पर आधारित होकर भी भारतीय है। उसमें आरंभ से ही देश बोलता रहा है: ''मैं मानता हूँ कि भारत की आधुनिक भाषाओं में हिंदी ही सच्चे अर्थ में सदैव भारतीय भाषा रही है, क्योंकि वह निरंतर भारत की एक समग्र चेतना को वाणी देने का चेतन प्रयास करती रही है।''[19] इस प्रकार हिंदी एक बृहत्तर आदर्श को साथ लेकर चली है ओर ऐसा करने में उसने प्रदेश की उपेक्षा नहीं की है। इस प्रकार अज्ञेय ने स्वदेशी भाषा पर बल देते हुए हिंदी भाषा के महत्व को रेखांकित किया। साथ ही उन्होंने भारतीय भाषाओं की निरंतर बढ़ रही उपेक्षा की चर्चा अनेक स्थान पर करते हुए उसके प्रति चिंता व्यक्त की है। इसके लिए उन्होंने भारतीय समाज में लगाता अपने पाँव पसार रहे 'अंग्रेजी आभिजात्यवाद' को ज़िम्मेदार ठहराया। अंग्रेज़ी के प्रति इस अतिरिक्त मोह को उन्होंने सत्ता की राजनीति से जोड़कर देखा और कहा कि यदि हमें परिस्थिति को बदलना है तो अंग्रेज़ी के प्रति यह अंधा मोह छोड़ना होगा और भारतीय भाषाओं को अधिक से अधिक व्यवहार में लाना होगा : ''यदि हमें इस परिस्थिति को बदलना है, सुधारना है, राजनीति

का मानवीयकरण करना है, यदि हमें इस देश में मानव के व्यापकतर कल्याण की ओर ध्यान देना है तो हमें अंग्रेज़ी का यह मोह, आभिजात्य का अंधापन और भारतीय भाषाओं को अपना कर उन्हीं को अपने सार्वजनिक जीवन और राजनीति का आधार बनाना होगा।''[20]

इलियट के सामने भाषा को लेकर वैसी समस्या नहीं थी जो भारतीय संदर्भ में भाषिक वैविध्य, प्रादेशिक और स्थानीय भाषाओं के कारण उपजी थी और जिसका सामना अज्ञेय कर रहे थे। फिर भी इलियट में अपनी भाषा (अंग्रेज़ी) को लेकर एक विशेष सजगता और समर्पण का भाव दिखाई देता है। एक कवि होने के नाते भाषा को लेकर वे बहुत बड़ी जिम्मेदारी का अनुभव करते हैं। उनका मानना है कि अपनी भाषा के प्रति कवि का दायित्व बहुत बड़ा होता है जहाँ भाषा के विकास ओर विस्तार की ओर उसे विशेष ध्यान देना होता है। स्वदेशी भाष के व्यवहार पर बल देते हुए उनका मानना है कि कोई भी कवि अपनी गहनतम् अनुभूतियों की सचेत अभिव्यक्ति अपनी ही भाषा की कविता में कर सकता है किसी अन्य भाषा की कविता में नहीं। इसके पीछे कारण यह है कि कविता का मूल सरोकार भावों ओर संवेदनाओं से है जो कि विशिष्ट होती हैं। इस विशिष्टता के कारण ही वे किसी अन्य भाषा में अभिव्यक्ति नहीं पा सकते जबकि किसी भिन्न भाषा में व्यक्त विचार वही विचार हो सकते हैं जो मूल भाषा में हैं : ''कविता निरंतर हमें ऐसी तमाम चीज़ों की याद दिलाती है जो केवल एक ही भाषा में व्यक्त हो सकती है और जिनका अनुवाद नहीं किया जा सकता।''[21] ("Poetry is a constant reminder of all the things that can only be said in one language, and are untranslatable.") ''हर भाषा की कविता में कुछ ऐसी विशेषताएँ होती हैं जिन्हें वे लोग ही समझ सकते हैं जिनकी वह मातृभाषा है।''[22] ("...there are qualities of the poetry of every language, which only those to whom the language is native can understand.")

साहित्य में अनुवाद की भाषा को लेकर सामान्यतः जो समस्याएँ आती हैं, एक रचनाकार होने के नाते स्वयं इलियट भी उनका सामना कर रहे थे। भाषा पर विचार करते हुए उन्होंने अनेक स्थान पर इनका उल्लेख भी किया है। उनका मानना है कि किसी भी रचना की अपनी भाषा में ऐसी अर्थ–व्यंजना होती है जिसे अनूदित करके अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। यही कारण है कि किसी भी रचना का अनुवाद करते समय उसमें निहित अर्थ को काफी क्षति पहुँचाती है और गद्य की तुलना में कविता में इस क्षति की मात्रा अधिक होती है। इसका कारण है गद्य की अपेक्षा कविता का कहीं अधिक स्थानीय होना और उसमें जनभाषा का प्रयोग।

कवि अपनी कविता के लिए जिस भाषा को चुनता है उसका एक–एक शब्द बहुमूल्य और विकल्पहीन होता है। एक अच्छी कविता से कभी एक शब्द भी हटाकर उसके स्थान पर दूसरा शब्द नहीं रखा जा सकता। कवि जिस स्रोत से अपने शब्दों को चुनकर या छाँटकर लाता है उसकी जड़ें अतीत के हज़ारों वर्षों के संस्कारों से जुड़ी हो सकती हैं, यथासंभव होती हैं : ''कवि भाषा के एक–एक शब्द का हज़ार–हज़ार वर्ष का संस्कार होता है।''[23] शब्द–चयन और शब्द–प्रयोग के प्रति अज्ञेय काफी सतर्क थे ओर इस सतर्कता के कारण ही वे अनुवाद में भी ऐसी भाषा का विरोध करते हैं जो अर्थहीन हो अथवा जिसमें ऐसे भाषिक प्रयोग हों कि उसे पढ़ते ही यह एहसास हो जाए कि वह अनूदित है। उनके अनुसार ऐसी भाषा को स्वीकार करना भाषिक दासता और सांस्कृतिक हीनत्व का स्वीकार है : ''अनुवादगंधी भाषा को स्वीकार कर लेना केवल भाषिक स्तर पर दासता नहीं है बल्कि सांस्कृतिक हीनत्व का स्वीकार है।''[24]

1975 के बाद हिंदी भाषा में वह दौर था जब अंग्रेज़ी के बहुत से प्रचलित शब्द अनूदित होकर अथवा ज्यों–के–त्यों हिंदी में प्रवेश पा रहे

थे। हिंदी को इन शब्दों से और अधिक समृद्ध बनाने में अज्ञेय ने बतौर साहित्यकार एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। शब्दों की बारीक समझ, उसके मूल स्रोत और इतिहास को परखते हुए जो अर्थ छवियाँ सामने आती हैं उसे ही केंद्र में रखकर अज्ञेय उन्हें पारिभाषित करते हैं, उनका अनुवाद करते हैं। शब्दों के चुनाव के प्रति इस विशेष सजगता के संकेत–सूत्र जगह–जगह उनके लेखन में बिखरे मिलेंगे। अंग्रेज़ी के बहुप्रचलित शब्द–'रेस्टोरेंट' के लिए हिंदी में प्रयुक्त शब्द रेस्त्रां, रेस्तरां आदि के स्थान पर वे 'रसतुरंत' शब्द को अधिक उपयुक्त पाते हैं तो इसके पीछे यही कारण है कि इस शब्द में निहित अर्थ–ध्वनि उसे कहीं अधिक सार्थक बना देती है। इसी तरह एक स्थान पर उन्होंने अंग्रेज़ी के 'पोसट इंडिपेंडेंस' शब्द के लिए हिंदी में व्यवहृत 'स्वातंत्र्योत्तर' शब्द पर आपत्ति दर्ज करते हुए कहा है कि स्वतंत्रता अभी समाप्त नहीं हो गई है और जब वह वर्तमान है तो उसके लिए यह प्रयोग उपयुक्त नहीं है, 'स्वातंत्र्य युग' कहना ही अधिक प्रासंगिक होगा। 'पोस्टवार' या 'युद्धोतर' शब्द का व्यवहार युद्ध–समाप्ति के बाद की स्थिति के लिए होता है, इसलिए वहाँ तो यह प्रयोग ठीक है किंतु 'पोसट इंडिपेंडेंस' के लिए 'स्वातंत्र्योत्तर' शब्द का प्रयोग अखरता है। इसी प्रकार एक स्थान पर वे 'धर्म' शब्द की चर्चा करते हुए कहते हैं कि आज शिक्षा के पश्चिमी संस्कारों के परिणामस्वरूप हम धर्म शब्द का वही अर्थ मानने लगे हैं जो अंग्रेज़ी के 'रेलिजन' अथवा लातीना भाषा के 'रेलिगिओ' शब्द का होता है। यह धारणा सही नहीं है। रेलिजन शब्द जिस धातु से बना है उसका अर्थ है –'बाँधना' जबकि धर्म शब्द का अर्थ इसके ठीक विपरीत धारण करना है, जिससे हम मुक्त होते हैं। धर्म को अंग्रेज़ी शब्द फंक्शन अथवा नेचुरल फंक्शन से जोड़ते हुए अज्ञेय कहते हैं : ''किसी भी चीज़ का, किसी भी प्राणी का वही होना जो कि वह है, उसका धर्म है। दूसरे छोर पर धर्म वह सब कुछ है जो हमारे जीवन को अर्थवान बनाता है।''[25] इस प्रकार धर्म का जो स्वरूप हमारे सामने आता है उसका किसी संप्रदाय अथवा मत विश्वास से कोई संबंध नहीं है। धर्म और संप्रदाय को साथ जोड़कर देखना गलत है। इस प्रकार शब्दों की गहराई में जाकर उसे देखने–समझने और व्याख्यायित करने की अज्ञेय की प्रवृत्ति उन्हें रचनाकार से भी आगे बढ़कर अन्वेषक का दर्जा देती है।

हिंदी के ऐसे बहुत से प्रचलित शब्द हैं जो विदेशी स्रोत से आए हैं और वे हिंदी भाषा में इस कदर घुल–मिल गए हैं कि सामान्यतः हमारा इस ओर ध्यान भी नहीं जाता कि वे विदेशी शब्द हैं। अज्ञेय को हिंदी में आने वाले विदेशी शब्दों और उनके स्रोत का भी अच्छा ज्ञान था और अपने अनेक लेखों में उन्होंने पाठक से इस जानकारी को साझा भी किया है। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान बहुप्रचलित शब्द *फिरंगी* का आमतौर पर प्रचलित अर्थ 'अंग्रेज़' लिया जाता रहा है और आज भी लोग इसी अर्थ में इसे ग्रहण करते हैं। अज्ञेय शब्द पारखी थे, गहरे में जाकर शब्दों के अर्थ और उसके स्रोत खोज निकालने की कला में सिद्धहस्त। 'फिरंगी' शब्द का उल्लेख करते हुए वे कहते हैं कि यह शब्द फ्रांस से बना है और इसका अर्थ मात्र अंग्रेज़ो तक सीमित नहीं है। भूमध्यसागर के उत्तरी तट से आने वाले सभी गौरवर्ण विदेशी चाहे वे फ्रांसीसी हों, पुर्तगाली, इटालियन या अंग्रेज़ इसके अंतर्गत आएँगे। इसी तरह एक अन्य स्थान पर कीकली शब्द की चर्चा करते हुए वह कहते हैं कि यह शब्द प्राचीन ग्रीक भाषा से आया है। थाईलैंड और कंबुजिया में शुभ–प्रभात और शुभ–रात्रि के लिए *प्रातः स्वस्ति* (प्राट्सोस्टि) और *सांय स्वस्ति* (सायोसोष्टि) शब्द का व्यवहार होता है जो संस्कृत से इन शब्दों के जुड़ाव का संकेत देता है। इस प्रकार शब्दों की एक लंबी सूची है जिनके मूल स्रोत तक जाकर अज्ञेय उनकी सार्थकता की तलाश करते हैं। शब्दों और उनके अनुवाद के प्रति अज्ञेय की सजगता उन्हें विशिष्ट

बनाती है। ऐसे में वे सारे आक्षेप अपने आप निरस्त्र हो जाते हैं जो उनकी भाषा में अंग्रेज़ियत की तलाश करते हुए उन पर लगाए गए हैं।

[1] दूसरा सप्तक, भूमिका, पृ07–8
[2] दूसरा सप्तक, भूमिका, पृ0–8
[3] मलयज, कविता से साक्षात्कार, पृ0–141
[4] तारसप्तक, वक्तव्य, पृ0–270
[5] 'इशारे ज़िंदगी के', सदानीरा(भाग–2) पृ0–60
[6] तारसप्तक, वक्तव्य, पृ0–270
[7] 'द सोशल फंक्शन ऑफ पोइट्री', ऑन पोइट्रि एंड पोइट्स, पृ0–18
[8] 'द सोशल फंक्शन ऑफ पोइट्री', ऑन पोइट्रि एंड पोइट्स, पृ0–20
[9] 'द सोशल फंक्शन ऑफ पोइट्री', ऑन पोइट्रि एंड पोइट्स, पृ0–21
[10] 'द सोशल फंक्शन ऑफ पोइट्री', ऑन पोइट्रि एंड पोइट्स, पृ0–22–23
[11] 'द सोशल फंक्शन ऑफ पोइट्री', ऑन पोइट्रि एंड पोइट्स, पृ0–22
[12] 'द सोशल फंक्शन ऑफ पोइट्री', ऑन पोइट्रि एंड पोइट्स, पृ0–19
[13] 'द म्यूज़िक ऑफ पोइट्री', ऑन पोइट्रि एंड पोइट्स, पृ0–29
[14] 'द म्यूज़िक ऑफ पोइट्री', ऑन पोइट्रि एंड पोइट्स, पृ0–31
[15] 'द म्यूज़िक ऑफ पोइट्री', ऑन पोइट्रि एंड पोइट्स, पृ0–31
[16] अंतरा, पृ0–117
[17] 'प्रयोग और प्रेषणीयता', आत्मनेपद, पृ0–29
[18] 'साहित्य प्रवृत्तियों की सामाजिक पृष्ठभूमि', सर्जना और संदर्भ, पृ0–75
[19] 'हिंदी भाषा का वर्तमान और भविष्य', अद्यतन, पृ0–11
[20] 'समग्र परिवेश की राजनीति', केंद्र और परिधि, पृ0–144
[21] 'द सोशल फंक्शन ऑफ पोइट्री', ऑन पोइट्रि एंड पोइट्स, पृ0–23
[22] 'द सोशल फंक्शन ऑफ पोइट्री', ऑन पोइट्रि एंड पोइट्स, पृ0–24
[23] अंतरा, पृ0–15
[24] 'संस्कृति की चेतना', केंद्र और परिधि, पृ0–285
[25] 'विराट का संस्पर्श', केंद्र और परिधि, पृ0–336